तथागत बुद्ध की देशनाओं में तृष्णा का स्वरुप : एक विश्लेषण

सर्वेश कुमार

शोध छात्र, पालि विभाग,

नव नालन्दा महाविहार, (सम्विश्वविद्यालय) नालन्दा, बिहार।

Email-Id: - sarvesh993419@gmail.com

तथागत बुद्ध ने बोधगया में सम्बोधि प्राप्त करने के बाद प्राणिमात्र के दुःखो से निजात दिलाने के लिए ऋषिपत्तन, मृगदाव आधुनिक सारनाथ की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर पंचवर्गीय भिक्खुओं (कोण्डिन्य, भद्रिय, वप्प, महानाम और अश्वजित्) को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा 'प्रव्रजित' (संन्यासी) व्यक्तियों को **दो अतियों** का सेवन नहीं करना चाहिए, एक ''**कामसुखल्लिकानुयोगो** (काम–सुख अर्थात् कामवासनाओं में अत्यधिक लिप्त होना) जो हीन एवं गँवार, मुर्खों द्वारा करणीय है जो पृथग्जनों (अज्ञजनों) के योग्य है, अनार्य और अनर्थ से भरा हुआ है। दूसरा **अत्तकिलमथानुयोगो''**[1] (अपने आप को कष्ट देना, यातना पहुँचाना) अत्यधिक अनर्थकारी तपस्याओं में लगे रहना। यह भी एक प्रकार का दुःख है। जो अनार्य द्वारा सेवित है और अनर्थ से भरा हुआ है। इस प्रकार तथागत बुद्ध कहते हैं 'भिक्खुओं! तथागत ने इन दोनों अतियों को छोड़कर **मध्यम् मार्ग** का साक्षात्कार किया है, जो नेत्र को खोलने वाली, विशिष्ट ज्ञानदायक है एवं उपसमाय (शान्ति), अभिज्ञा (ज्ञान), सम्बोधि (पूर्ण ज्ञान) और निर्वाण की ओर ले जाने वाली हैं। इस प्रकार बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्खुओं को इन चार आर्यसत्यों की देशना दी।

1. दुःख आर्यसत्य
2. दुःख समुदय आर्यसत्य (दुःख का कारण)
3. दुःख निरोध आर्यसत्य (दुःख का निवारण या निवृत्ति)
4. दुःख निरोधगामिनी पटिपदा आर्यसत्य (दुःख निवृत्ति या निवारण का मार्ग)

यहाँ प्रश्न उठता है कि इसे आर्य सत्य क्यों कहा गया है? इसके उत्तर स्वरुप हम कह सकते हैं कि इसे आर्य जनों द्वारा ही जाना जा सकता है, पृथक्जनों द्वारा नहीं। आर्य हम उसी को कह सकते हैं जो सभी प्राणियों की हिंसा से विरत रहता है, जो सम्पूर्ण क्लेशों को समाप्त कर क्लेशमुक्त हो गया है, जो अकुशल धर्म को छोड़कर कुशल धर्म में प्रतिष्ठित रहता है, वे ही आर्य है, वही आर्य कहलाने का अधिकारी है। तथागत बुद्ध ने

सम्पूर्ण संसार को दुखमय दृष्टि से देखा है। भगवान बुद्ध ने **पंच–उपादन** (साधन) **स्कन्ध** (रुप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) **कर्म** और **क्लेशवश** एक योनि से दूसरी योनि में निरन्तर प्रवाहमान को ही संसार अर्थात् **''संसरति इति संसारं''** कहा है। अतः इस संसार से छुटकारा पाने के लिए भगवान बुद्ध ने सारी सुख साधन को छोड़कर गृहत्याग किया था। दुःख को प्रमाणित करने के लिए किसी युक्ति की आवश्यकता नहीं है। तथागत बुद्ध ने दुःख का कारण कर्म और क्लेश को बताया है जिसके मूल में अविद्या है। असार को सार के रुप में देखना, अनित्य को नित्य के रुप में देखना, अनात्म को आत्मा के रुप में देखना आदि ही दुःख का कारण है। इसके चलते मनुष्य निरन्तर इस संसार में प्रवाहशील है।

तथागत ने चार आर्यसत्यों की देशनाओं में द्वितीय आर्यसत्य के रुप में दुःख समुदय अर्थात् दुःख के कारण को बताया है। जो अपने लिए ही जीवन जीने की तीव्र आकांक्षा एवं अपने चारों ओर की परिस्थिति से उत्पन्न वेदनाएँ जो एक पृथक (अलग) अपने आपको भ्रम पैदा करती है। यह भ्रमाक मन अपनी क्रियाशीलता का प्रदर्शन अपनी स्वार्थ पूर्वक इच्छाओं की पूर्ति के रुप में प्रकट करता है। जो मनुष्य को कष्टों और दुःख के मायाजाल में फंसा लेती है। जीवन के तथाकथित भोग के सुमधुर ध्वनियाँ है जो मनुष्य को दुःख की ओर आकर्षित करती है।

बौद्ध दर्शन में कार्य–कारण का सिद्धान्त के अनुसार किसी भी वस्तु की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, अर्थात् मानव जीवन का प्रत्येक पहलू एक दूसरे पर आधारित है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार, बिना किसी कारण के कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता, यह कार्य–कारण का नियम स्थिर तथा सर्वकालिक है इसे वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। यदि दुःख कार्य है, तो उसका कारण भी अवश्य है। अब यह प्रश्न उठता है कि वे कौन से कारण है, जिनके फलस्वरुप मानव को नाना प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है। यह विचारणीय है। सम्पूर्ण दुःखों का मूल कारण तृष्णा को बतलाया गया है, कहा भी गया है की तृष्णा ही समस्त दुःखो की जननी है सुख की इच्छा, सुख पाने की कामना करना ही तृष्णा है, कामना के बाढ़ के फलस्वरुप तृष्णा हमेशा बलवती होती रहती है, मनुष्य में तृष्णा की आग कभी बूझती ही नहीं। बौद्ध–दर्शन में तीन प्रकार की तृष्णाओं का उल्लेख किया गया है :– **काम तृष्णा, भव तृष्णा और विभव तृष्णा।** तृष्णा को जानना ही संक्षेप में दुःख समुदय आर्यसत्य कहलाता है।

1. काम तृष्णा :– नाना प्रकार के काम गुणों एवं विषयों की कामना करता है। जो काम तृष्णा के कारण होता है उसे काम–तृष्णा कहते हैं। वर्त्तमान समय में अगर देखा जाये तो समाज में बढ़ते व्यभिचार जैसे कई अपराधों का प्रमुख कारण काम तृष्णा को ही माना जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण आज समाज के सामने दिखाई दे रहा है। बड़े–बड़े धर्म के ठेकेदारो एवं पाखण्डी लोगों की स्थिति किसी से छुपा नहीं है। इसे लक्ष्य कर धम्मपद में कहा गया है :–

'' कामतो जायती सोको, कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।[2]

अर्थात् :– काम (कामना) से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है, काम से विमुक्ति (व्यक्ति) को शोक नही होता, फिर भय कहाँ से होगा?

अगर विषयों के पाने की चाह, लालसा अथवा प्यास मनुष्य के मन में न हो तो वह मनुष्य भव–सागर को पार कर ले और दुःख न भोगें किन्तु मन विषयों से मुक्त नहीं हो पाता। तृष्णा सबसे बड़ा बन्धन है। जो मनुष्य को संसार तथा संसार के गतिविधियों से बाँधे रखता है। धम्मपद में यह कथन कहा भी गया है[3] कि राग में अवगाहित व्यक्ति मकड़ी के जाले की तरह अपने बनाये जाल में ही फँस जाता है तथा आर्यजन इस मकड़–जाल को भेदकर, अपेक्षा रहीत हो, सब दुःखों से मुक्त हो जाते है। आर्यजन लोहे, लकड़ी या रस्सी का बन्धन नहीं मानते है। वे वास्तविक बन्धन रत्नाभूषण, पुत्र–पुत्री एवं पत्नी, यानि अपने परिवार को मानते हैं[4] जो अनुरक्ति है। आर्यपुरुष इसी को दृढ़ बन्धन मानते हैं जो पत्तन की ओर ले जाने वाला है। इस प्रकार हम देखते है की सभी बन्धनों का जड़ तृष्णा ही है।

2. भव तृष्णा : भव संसार अथवा जन्म को कहते हैं। व्यक्ति अपने वासनाओं तथा सुख की पूर्ति के लिए संसार में बने रहने की कामना करता है, इस तरह की कामना ही भव तृष्णा कहलाता है। पाँच इन्द्रियों का स्पर्श व्यक्ति के लिए अमोद–प्रमोद होता है और उसके विषयों में आसक्त होकर मनुष्य सुखद संवेदनाओं की अनुभूति प्राप्त करता है। जब उस संवेदना में आनन्द प्राप्त है, तब फिर वही से मोह उत्पन्न होता है। संवेदनाओं में जो राग है वही उपादान (आसक्ति) है। जहाँ उपादान है वहाँ भव है, जहाँ भव है वहाँ जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना–पीटना एवं पीड़ित होना, चिन्तित होना, परेशान होना आदि दुःख

आर्यसत्य है। तृष्णा के कारण ही मानव जन्म–मरण के भवचक्र में घुमते रहते है और इस जन्म में तथा अगले जन्मों में दुर्गतियों को प्राप्त होता है।

3. **विभव तृष्णा :** विभव का अर्थ है संसार का नाश। जिस प्रकार संसार के शाश्वत होने की इच्छा दुःख उत्पन्न करती है, उसी प्रकार संसार के नाश होने की इच्छा भी मनुष्य को दुःख उत्पन्न करती है। जो लोग संसार को नाशवान समझते हैं, वे संसार में रहकर अपने जीवन को सुखमय एवं अमोद–प्रमोदयुक्त बनाये रखने का उनका एक मात्र ध्येय होता है। विभव तृष्णा से ग्रसित लोग चार्वाक मत के अनुगामी होते हैं जिसके अनुसार इस प्रकार कहा गया है :–

''यावजीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।''[5]

अर्थात् :– ''जब तक जीवन है, सुख से जीओ, चाहे इसके लिए क्यों न ऋण लेकर धृत पान करना पड़े। जब शरीर भष्म का ढ़ेर बन जायगा तो फिर कहाँ पुनर्जन्म? ऐसे व्यक्ति को लिए हुए ऋण की जरा भी चिन्ता नहीं होती कि ऋण चुकाना भी होगा। उनका चिन्तन है कि जब शरीर मृत्यु का वरण करेगा तो कौन किसको ऋण चुकाने के लिए आयेगा? यही तृष्णा संसार में विरोध तथा विद्रोह को उत्पन्न कराती है। कामना के वश में होकर चोर चोरी करता है, कामना के कारण व्यक्ति कायिक, वाचिक तथा मानसिक अकुशल कर्म करता है, धम्मपद में बुद्ध की देशना है :–

''यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसन्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवड्ढव बीरणं।।''[6]

अर्थात् :– 'लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लेती है, उसके (दुःख) शोक वैसे ही बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में 'बीरण' नाम का जंगली घास बढ़ता रहता है।

तृष्णा से युक्त पुरुष संसार–चक्र में दीर्धकाल तक भटकता–फिरता, बार–बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त हो संसार–सागर से पार नहीं होता। तृष्णा के दुष्परिणाम को जानकर व्यक्ति को तृष्णारहित तथा आसक्ति–मुक्त हो शील का पालन करते हुए **'संतुट्ठि परमं सुखं'** का अनुकरण करना चाहिए। धम्मपद में इसे लक्ष्य कर कहा गया है :–

''आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठि परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं।।''[7]

अर्थात् :– 'आरोग्य परम लाभ है, संतुष्टि परम धन है, विश्वास परम बंधु है, निर्वाण परम सुख है'।

नित्य समझना ही दुःख का कारण :– भगवान बुद्ध की धारणा के अनुसार संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। नित्यवाद के कारण से ही आत्मवाद उत्पन्न होता है। जहाँ नित्यवाद है वहाँ आत्मवाद है। आत्मवाद के कारण से ही तृष्णा की उत्पत्ति होती है, जहाँ आत्मवाद है वहाँ तृष्णा है। तृष्णा के कारण से ही राग, द्वेष, लोभ की उत्पत्ति होती है और राग, द्वेष, लोभ के कारण से दुराचरण की उत्पत्ति होती है। जहाँ दुराचरण है वहाँ दुःख है। तृष्णा के निरोध होने के कारण राग, द्वेष, लोभ आदि का निरोध हो जाता है। राग, द्वेष, लोभ आदि के समाप्त होते ही सदाचरण की उत्पत्ति होती है। जहाँ सदाचरण है वहाँ सुख है।[8]

पालि सन्दर्भों में दुःख–समुदय पर छोटी या बड़ी सूचियों के रुप में विविध कारण निर्देश किये गये हैं।[9] जिनमें तृष्णा, कर्म, अहंकार, दृष्टि अथवा उपादन को दुःख का कारण बतलाया गया है।[10] ऐसा प्रतीत होता है कि विशिष्ट अर्थ में दुःख का उत्पत्ति का मूल कारण कर्म है। निकायों में बार–बार कहा गया है कर्म ही जीवों का विरासत है, कर्म ही उनका बन्धु है और कर्म ही उनका सहारा है, कर्म ही जीवों को बान्धता है, कर्म ही मनुष्य को हीन तथा उत्तम बनाता है। बौद्ध दर्शन में दुःख के कारण के रुप में प्रतीत्यसमुत्पाद के बारह कड़ियों की व्याख्या किया गया है, जो विश्वचिंतन में अनूठी एवं अपूर्व माना गया है।

बौद्ध दर्शन में दुःख–समुदय के समाधान का प्रयत्न प्रतीत्यसमुत्पाद (एक वैज्ञानिक विधि) के द्वारा किया गया है लेकिन कार्य–कारण नियम का सामान्यतः प्रतिपादन भी इसका मुख्य उद्देश्य था। अविद्या दुःख का परम कारण है और प्रतीत्यसमुत्पाद अविद्या के स्वरुप का व्याख्यान करते हुए परमार्थ का निर्देश करता है। **अविद्या–विजटित** संसार के भीतर ही कार्य–कारण का प्रवर्त्तन होता है और प्रतीत्यसमुत्पाद का गौण रुप अविद्या–ग्रस्त जीवन के अभ्यन्तर दुःख का चक्राकार विकास निरुपित करता है।

निष्कर्ष : मनुष्य अपने सुख–दुःखों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है। अपने अज्ञान और मिथ्यादृष्टियों से ही उन्होंने स्वयं अपने लिए दुःखों को उत्पाद किया है, अतः कोई दूसरी शक्ति ईश्वर या महेश्वर उन्हें दुःखों से मुक्त नहीं करा सकता। इसके लिए मनुष्य को स्वयं प्रयास करना होगा। किसी के वरदान या कृपा से दुःख मुक्ति असंभव है। तथागत बुद्ध द्वारा आत्मविजय पर बल देते हुये कहा गया है कि अपने ऊपर विजय पाना ही मानव की अनन्त शान्ति का चरम साधन है। धम्मपद के शब्दो में इसे कहा गया है :–

''अत्ता ही अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परो सिया।
अत्ता ही सुदन्तेन,नाथं लभति दुल्लभं।।''[11]

अर्थात् :– मनुष्य अपना स्वामी स्वयं है, कोई दूसरा उसका स्वामी नही हो सकता। अपने आपको (**कायिक, वाचिक, मानसिक** कर्मों को) भली–भांति वश में करके (**प्रज्ञा** द्वारा ही) यह दुलर्भ (स्वामित्व) को प्राप्त करता है। दासता, शोषण और दोहन के विरुद्ध मानव को अपने पैरों पर खड़े होने और उसे गौरव प्राप्त करने के लिए भगवान बुद्ध का यह उपदेश एक मूलमंत्र है। धम्मपद की यह दूसरी गाथा में कहा गया हैं :–

''तुम्हे हि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धना।।''[12]

अर्थात् :– 'तपना (काम) तो तुम्हें ही पड़ेगा, तथागत तो सिर्फ मार्ग बताने वाले हैं'। इस प्रकार तथागत बुद्ध ने दुःख का कारण एवं साथ–साथ उसका निवारण का मार्ग बताकर विश्व में शान्ति और सद्भाव पूर्ण बन्धुता का संदेश देकर मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन जीने का कला सिखाया।

————:————

–: संदर्भ सूची :–

1. महावग्गपालि, सम्पादक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती, वाराणसी, 2013, पृष्ठ–17.
2. धम्मपद, पियवग्गो, गाथा–215.
3. धम्मपद, तण्हावग्गो गाथा–347
4. धम्मपद, तण्हावग्गो गाथा–345
5. चार्वाक दर्शन, माध्वाचार्य, सर्वदर्शनसग्रह, पृष्ठ–3
6. धम्मपद, तण्हावग्गो, गाथा–335.
7. धम्मपद, सुखवग्गो, गाथा–204.
8. बौद्ध जीवन मार्ग, नागरत्न, सम्यक प्रकाशन, 2007, पृष्ठ–29.
9. मज्झिमनिकाय, 3–19
10. विसुद्धिमग्गो, पृष्ठ–366.
11. धम्मपद, अत्तवग्गो, गाथा–160.
12. धम्मपद, मग्गवग्गो, गाथा –276.
13. अभिधर्म बिन्दु, हरिशंकर शुक्ल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2001.

———: भवतु सब्बमंगलं :———